॥ ओ३म् ॥

अश्वमेध यज्ञ परिचय

लेखक—श्री वेदप्रिय शास्त्री

— प्रकाशक —

आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा

4 भ 27, विज्ञान नगर, कोटा-324005 (राज.)

प्रथम संस्करण—दस हजार

संवत्–2051 वि०　　मूल्य–2.00 रु०　　सन्–1994

सम्मति

वैदिक कर्मकाण्ड का आरम्भ वेद से ही हुआ है। यजुर्वेद में राजसूय अश्वमेध, वाजपेय आदि अनेक यज्ञों का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः यज्ञ सृष्टि प्रक्रिया को स्थूल पदार्थों द्वारा व्यक्त करने की एक रूपकात्मक योजना ही थी। अश्वमेध के द्वारा शासक राजा अपने राष्ट्र की रक्षा तथा उसके नव-निर्माण का संकल्प व्यक्त करता था। धीरे २ यज्ञों में अनेक प्रकार के अनुचित अनावश्यक तथा वीभत्स कर्मकाण्ड जुड़ गये, जिसकी प्रतिक्रिया में जैन बौद्ध आदि मतों ने यज्ञ संस्था का पूर्णरूप से बहिष्कार किया तथा भारत में वैदिक यज्ञ प्रथा को आघात पहुंचाया।

ऋषि दयानन्द ने वैदिक यज्ञों के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करते हुए अश्वमेध आदि यज्ञों के पीछे निहित भावना को उजागर किया और मध्यकालीन यज्ञों में आई यज्ञ विषयक विकृतियों को दूर किया। आज हम देखते हैं कि वैदिक यज्ञ प्रक्रिया का लेश मात्र भी न समझने वाले गायत्री परिवार के अन्धश्रद्धायुक्त संचालक एवं उनके अनुयायी अश्वमेध यज्ञ के नाम पर विभिन्न प्रकार के पाखण्डों एवं आडम्बरों का प्रसार कर रहे हैं। वे भारत के जिन नगरों में लोगों के करोड़ों रूपयों का सत्यानाश कर अश्व-मेध के नाम पर जो कुछ कर रहे हैं, वह यज्ञ न होकर यज्ञ का उपहास ही है इससे लोगों में जिस अन्धविश्वास की वृद्धि होती है और मनुष्य के लिये आवश्यक तार्किक एवं वैज्ञानिक चिन्तन का जैसा ह्रास होता है, उसे ये साम्प्र-दायिक पूर्वाग्रह वाले क्षुद्रमनस्क व्यक्ति सर्वथा नहीं समझते। ऐसी स्थिति में वैदिक कर्मकाण्ड के ज्ञाता और आर्यसमाज के प्रबुद्ध और जागरूक लेखक श्री वेदप्रिय शास्त्री की समर्थ लेखनी से प्रस्तुत "अश्वमेध यज्ञ परिचय" शीर्षक पुस्तक पाठकों को समुचित मार्गदर्शन करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

जोधपुर
आषाढ़ कृ० 6-2051 वि.
(बुधवार, 29 जून 1994)

(प्रो०) भवानी लाल भारतीय
एम. ए. पी-एच. डी.
प्रधान-सार्वदेशिक धर्मार्य सभा।
अध्यक्ष-आर्य लेखक परिषद्।
उपप्रधान-परोपकारिणी सभा।

पुरोवाक्

नवम्बर 1992 को जब जयपुर में अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ तो यह सोचकर बड़ा दुःख हुआ कि मूल अश्वमेध से इसका दूर से भी सम्बन्ध नहीं है। यह तो एक धोखा तथा अश्वमेध यज्ञ के नाम पर खड़ा किया गया पाखण्ड है, जो एक हजार यज्ञ कुण्डीय अवैदिक गायत्री महायज्ञ का ही दूसरा नाम है। हमने इसकी समीक्षा में एक लेख लिखा जो "जयपुर में सम्पन्न अश्वमेध यज्ञ एक समीक्षा "शीर्षक से दयानन्द संदेश, राजधर्म (दिल्ली) और आर्यमित्र (लखनऊ) इत्यादि आर्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। विद्वानों का इस ओर ध्यान गया। आर्यसमाज की शिरोमणि सभा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधी सभा, दिल्ली की धर्मार्य सभा के अध्यक्ष डॉ० भवानी लाल जी भारतीय सहित कई विद्वानों ने हमसे आग्रह किया कि हम अश्वमेध यज्ञ परिचय ट्रेक्ट लिखकर प्रकाशित करावें और वितरित कर जन सामान्य को अश्वमेध के वास्तविक परिचय से अवगत करावें। वर्तमान आर्ष साहित्य में भी सम्भवतः यह पहला ट्रेक्ट होगा, अतः लिखने का दायित्व हमारे विद्वान् मित्र श्री वेदप्रिय जी शास्त्री ने लिया और जो लिखा वह आप सुधी पाठकगणों के कर कमलों में है।

यद्यपि शास्त्री जी ने इस दुरूह याज्ञिक कर्मकाण्ड के विषय को सरल करके समझाने का प्रयत्न किया है तथापि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता पर विचार करना अभी शेष है, जो कतिपय कारणों से अभी सम्भव नहीं था। सम्भव हुआ और विद्वानों तथा दानदाताओं का पुनः सहयोग मिला तो हम इसके दूसरे भाग में इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता पर विचार करने के लिये शास्त्री जी या अन्य विद्वानों से आग्रह करेंगे।

यज्ञ-पद्धतियाँ ऋषि प्रणीत होती हैं। इनके कर्मकाण्डों में गूढ़ आशय छिपे होते हैं, फिर यज्ञ एक विज्ञान है। अतः यज्ञ पद्धतियों में मिलावट करना मनमाना संशोधन कर उन्हें विकृत करना, निन्दनीय है। हाँ इनकी युगानुकूल संगति सिद्ध करने के लिये शास्त्रीय प्रमाणों के मद्दे नजर इनमें फेरबदल (संशोधन) किया जा सकता है पर मूल पद्धति का स्वरूप तनिक भी विकृत नहीं होना चाहिए। फिर यह संशोधन कृत्य इतना सरल नहीं है कि चाहे जो

इसके नाम पर कुछ भी करने लग जाए। हम आशा करेंगे कि आर्य विद्वान् इस अति महत्वपूर्ण कार्य में आगे आएंगे और अश्वमेध सहित समस्त श्रौतयागों की युगानुकूल कोई ऐसी पद्धति तैयार करने में प्रयासरत होंगे, जिसको सार्वभौमिक मान्यता मिल सके और जिससे अश्वमेध सहित समस्त श्रौत यज्ञयाग सम्पादित किये जा सकें और इस विषय में पाखण्डो पर रोक लगाने हेतु जनता को जागृत किया जा सके।

आर्य परिवार प्रकाशन, समिति कोटा के संयोजक श्री नरेन्द्र कुमार जी वार्ष्णेय ने ट्रैक्ट को प्रकाशित कराने का दायित्व लेकर और दानदाताओं ने धन देकर इस विषय में अपनी प्रमुख भूमिका निभाई ही है पर दानदाता-ओं से सम्पर्क करने और अन्य आवश्यक कार्य करने में यदि स्वयं लेखक श्री वेदप्रियजी शास्त्री, आर्य परिवार संस्था, कोटा के कोषाध्यक्ष श्री राजेन्द्र कुमार जी आर्य और क्षेत्र के आर्यसमाज–कोटा, बांरा, रावतभाटा आदि के कार्यकर्ताओं(सर्व श्री रामजीलाल जी शर्मा, हनुमान प्रसाद जी, शंकरलाल जी पाल, प्रेम जी परिहार, करणसिंह जी आर्य, मुकुटलाल जी गुप्ता, चन्द्रविहारी जी आर्य, लक्ष्मण जी, श्रवणलाल जी शर्मा, माँगीलाल जी साहू, दिनेश जी व्यास, सेठ गजानन्द जी और देवेन्द्र कुमार जी इत्यादि) का सहयोग एवं नैतिक समर्थन न मिलता तो दस हजार प्रतियों का यह प्रकाशन अनुष्ठान सफल और पूर्ण नहीं होता।

डॉ० भवानीलाल जी भारतीय ने सम्मति भेजी और विश्ववेद परि-षद् के अध्यक्ष स्वामी श्री वीरेन्द्र जी सरस्वती ने वेद ज्योति (मासिक) के तीन अंकों में अश्वमेध यज्ञ पर स्वलिखित सामग्री प्रकाशित की और इस विषय में हमारा उत्साह वर्धन कर मार्गदर्शन किया। दानदाताओं ने हमारी अपील पर पूर्ववत् धन से सहयोग किया और प्यार दिया। श्री वेदप्रिय जी शास्त्री तो संस्था और प्रकाशन समिति के कर्ताधर्ता ही हैं। उन्होंने इतना शीघ्र इस दुरूह विषय पर सांगतिक ढंग से लिख दिया। हमारे संयुक्त परि-वार जनों का सहयोग सदा मिलता रहा है। सीमा प्रिन्टर्स, कोटा के मालिक श्री हरिकिशन जी एवं ओमप्रकाश जी रुद्रवाल ने वैयक्तिक रुचि लेकर त्वरित गति से छपाई कार्य पूर्ण किया। सबको बहुत २ धन्यवाद और साधुवाद।

आशा है इस प्रकाशन से अश्वमेध की वास्तविक जानकारी जनसा-मान्य को मिलेगी और हम सभी का परिश्रम और दानदाताओं का धन सार्थक होगा।

श्रावण शुक्ला 9, संवत् 2051 वि०
स्वतन्त्रता दिवस, सोमवार
(15 अगस्त 1994)

आपके स्नेह और सहयोग का आकांक्षी
डॉ. रामकृष्ण आर्य, एम. ए.पी-एच.डी.
मंत्री
आर्य परिवार संस्था, कोटा

अश्वमेध यज्ञ परिचय

हमारे देश में धर्म के नाम पर, यज्ञ और योग के नाम पर मनमाने पाखण्ड प्रचलित हो रहे हैं। जन सामान्य, जो कि शास्त्रीय परम्परा से पूर्णतया अपरिचित तथा धार्मिक कर्मकाण्ड के औचित्य से अनभिज्ञ है, उसकी धार्मिक भावना का धूर्त्त लोग जमकर शोषण कर रहे हैं। इन तथा-कथित धर्माचार्यों का उद्देश्य अपने को महापुरुष और परमात्मा का अवतार कहलाकर पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्त करना तथा जनता का धनहरण करना ही होता है। इसके साथ यदि राजनीतिबाज धूर्त्त भी सम्मिलित हो जावें तो फिर यह लूट और भी पराकाष्ठा को प्राप्त होती है। अभी कुछ समय से इसी प्रकार का एक नया पाखण्ड "अश्वमेध यज्ञ" के नाम पर प्रचलित किया गया है। देव संस्कृति दिग्विजय करने के बहाने कुछ लोग चले हैं लूट मचाने। पता नहीं कब और कहां देव संस्कृति की दिग्विजय हो रही है। क्या इस देश में काला बाजारी समाप्त हो गई ? रिश्वतखोरी, बलात्कार, व्यभिचार, अन्याय, अत्याचार, चोरी, तस्करी, नशाखोरी, जुआ, सट्टा, नारी उत्पीड़न व हत्याएँ समाप्त हो गए या अधिकांश में समाप्त हो गए ? क्या गरीबों, अनाथों, किसानों, मजदूरों का शोषण और दासता समाप्त हो गए ? क्या राष्ट्र के लोग व राजनेता सब सत्य के अनुयायी हो गए या अधिकांश में हो गए ? यदि नहीं, तो फिर कौन सी देव संस्कृति की विजय हुई है या फिर 80-जी का प्रमाण-पत्र लेकर दो नम्बरियों के धन को ट्रस्ट के माध्यम से काला-सफेद करने में सहयोग करना तथा पाखण्डपूर्ण कर्मकाण्ड के माध्यम से धर्म भीरु जनों का धन लूटना, स्वयं को पुजवाना और मौज मारना ही देव संस्कृति की विजय है ?

अश्वमेध के नाम पर उट-पटाँग ड्रामा करके वैदिक कर्मकाण्ड को दूषित करने वाले ये लोग कर्मकाण्ड का क, ख भी नहीं जानते। हमारी वर्तमान और भावी पीढ़ी इस ड्रामें को देखकर यही समझेगी कि यही वास्तविक अश्वमेध है। परन्तु हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि यह अश्वमेध नहीं है। अश्वमेध का इससे दूर से भी सम्बन्ध नहीं है। अपितु यह अश्वमेध का उपहास और वैदिक कर्मकाण्ड का विदूषण है। अश्वमेध इतना आसान यज्ञ

नहीं कि दनादन जितने चाहो कर डालो और इन्द्र की पदवी प्राप्त करने के अधिकारी बन जाओ। अतः यहां शतपथ ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थों के आधार पर वास्तविक अश्वमेध का परिचय जन सामान्य को कराया जा रहा है ताकि कोई इन धूर्तों के बहकावे में फंसकर धनादि न लुटवावे और वैदिक कर्मकाण्ड को दूषित होने से बचाया जावे।

<u>यज्ञ प्रकार</u>—वैदिक कर्मकाण्ड में दो प्रकार के प्रमुख यज्ञ कहे गए हैं। 1–मानस यज्ञ 2–द्रव्य यज्ञ। द्रव्य यागों को भी दो प्रकारों में विभक्त किया गया है। 1–श्रौत यज्ञ 2–स्मार्त यज्ञ। श्रौत यज्ञों में तीन प्रकार के कृत्य होते हैं। 1–इष्टियां 2–पशुबन्ध 3–सोमयाग। अश्वमेध श्रौतयागों में से एक है, इसका सवनीय पशु अश्व है।

<u>अधिकारी</u>—अश्वमेध करने का अधिकारी सार्वभौम शासक या वह सम्राट जो अभी सार्वभौम नहीं हुआ, होता है या सभी पदार्थों के इच्छुकों, सभी विजयों के (अपनी इन्द्रियों पर विजय के लिये भी) अभिलाषियों तथा अतुल समृद्धि के कांक्षियों द्वारा भी अश्वमेध किया जा सकता है। दुर्बल और दरिद्र शक्तिहीन जन इसके अधिकारी नहीं हैं। यह एक अत्यन्त शिक्षाप्रद कृत्य था किन्तु वैदिक संस्कृति के कुछ शत्रु वाममार्गियों ने इसके स्वरूप को विकृत करके अत्यन्त वीभत्स बना दिया। यथा घोड़े को मारकर हवन करना तथा मृत घोड़े से रानी का सम्भोग कराना, रानियों के साथ हँसी मजाक करना और इन्हें ब्राह्मणों को दानकर देना आदि। हम यहां उसका शुध्द रूप तथा उसका तात्पर्य या उद्देश्य संक्षिप्त में वर्णन कर रहे हैं।

<u>अश्वमेध यज्ञशाला</u>—श्रौत यज्ञों के सम्पादनार्थ जो यज्ञशाला बनाई जाती है उसमें तीन कुण्ड श्रौत अग्नियों के होते हैं तथा दो स्मार्त के। इस प्रकार कुल पाँच कुण्ड ही होते हैं। इनके नाम आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आवसथ्य एवं सभ्य है तथा क्रमशः इन्हीं नामों की अग्नियां जलती है। मुख्यतया आहुतियां मध्य में स्थित आहवनीय कुण्ड में ही दी जाती है, शेष कुण्ड कभी-कभी विशेष कार्य हेतु प्रयुक्त होते हैं। अतः सैकड़ों सहस्रों कुण्डों की कल्पना मूर्खतापूर्ण एवं अवैदिक है। यह द्रव्य का दुरुपयोग व कर्मकाण्ड का दूषण है तथा धर्म भीरू जनता का धन लूटने का एक तरीका है।

श्रौत यज्ञ—जिन यज्ञों का वेदों में साक्षात् वर्णन है वे श्रौत यज्ञ कहलाते हैं। श्रौत यज्ञ देव कर्म है मानुष नहीं सृष्टि रचना रूप यज्ञ को अग्नि, वायु, आदित्य, आपः, आकाश, आत्मा, मन, प्राण, आदि अनेक देवों ने जिस प्रकार विविध कर्मों से सम्पादित किया और कह रहे हैं, उन्हें ही श्रौतयाग कहते हैं। इनके द्वारा देव अमृत अर्थात् जीवन या सृष्टि जीवन का उत्पादन व उसकी रक्षा निरन्तर करते रहते हैं और अवधि से पूर्व इसे नष्ट नहीं होने देते। वेदों में मनुष्य को इन्हीं देवकृत्यों का अनुकरण करने का उपदेश किया गया है, इसी से उसका जीवन सफल होगा। "यद् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि।" अर्थात् जो देवों ने किया वही हम करें, यह वैदिक कर्मकाण्ड का मूल मन्त्र है।

मनुष्यों के अनुकरणार्थ ही कर्मकाण्ड विशेपज्ञ ऋषियों ने देवों और उनके कृत्यों का अभिनय लौकिक प्रतीकों के माध्यम से प्रत्यक्ष प्रदर्शन प्रणाली द्वारा कराने का विधान किया है, यही श्रौत कर्मकाण्ड है। इन श्रौतयागों का अनुसरण करते हुए जब मनुष्यों ने अपने कर्मकाण्ड को रचा तो वह स्मार्त कर्मकांड कहलाया जिसका स्मृतियों में वर्णन मिलता है। मध्यकाल के कर्मकांडी आचार्य इस तथ्य को भूल गए थे।

अश्वमेध—अश्वमेध भी एक देव कृत्य है। उसे देवों ने किस प्रयोजन से किया इत्यादि, निम्नलिखित प्रमाणों से विदित होता है। यथा-प्रजापति की आँख अस्वस्थ होकर बाहर निकल पड़ी अश्व हो गई, यही अश्व का अश्वत्व है। देवों ने अश्वमेध के द्वारा उसे पुनः यथास्थान आरोपित कर दिया। यह प्रजापति को पूर्ण करना ही था सो वह भी सर्वांग पूर्ण हो जाता है जो अश्वमेध से यज्ञ करता है। यह सर्व की ही प्रायश्चिति है, सर्व की चिकित्सा है। (शतपथ 13-2-6-1)

अब देखना है कि देवों का प्रजापति और अश्वमेध क्या है? इस विषय में शतपथ (13-1-7-3, 13-3-2-11) में आया है कि "अश्वमेध में इक्कीस सम्पादित होते हैं—बारह महीने, पांच ऋतुएं, तीन लोक और एक आदित्य ये सब मिलकर इक्कीस होते हैं। यही देव क्षत्र अर्थात् देवों का शासन विभाग है। वही सौभाग्य है। वही आधिपत्य है। वही आदित्य का सर्वोच्च स्थान है। वही ऐश्वर्य प्राप्त सम्राट है। यही एक विंश (इक्कीस)

है जो यह तपता है। यही अश्वमेध है। यही प्रजापति है। इसी प्रजापति नामक सम्पूर्ण यज्ञ को संस्कारित करके उसमें इक्कीस अग्निषोमीय पशुओं को नियुक्त करता है।" इस प्रकार ये ही अश्वमेध के इक्कीस हैं।

अश्वमेध यज्ञ का अर्थ—"क्षत्रमश्व" अर्थात् क्षत्रिय वर्ग अश्व है। "क्षत्रं राजन्य"। क्षत्र का अर्थ राजन्य अर्थात् राजा लोग हैं। (शतपथ—13-3-2-1) मेध का अर्थ है "यज्ञ साधन भूतो सार रसः" आज्य मेधः, मेधो वा आज्यम्। अर्थात् संगठन का साधन भूत सार भाग रस ही मेध है। जैसे धृत दूध का सार भाग है। अतः अश्वमेध का अर्थ हुआ "राष्ट्र यज्ञ के साधनभूत क्षत्रिय वर्ग का सार भाग राष्ट्र के स्वामी राजा के साथ प्रतिष्ठित शासन विभाग। इसको संस्कारित करके सर्वांग, समृद्ध बनाकर सार्वभौम एकछत्र साम्राज्य की स्थापना करना। इसीलिये क्षत्रिय यज्ञ उ वा एषः यदश्वमेधः" अर्थात् यह जो अश्वमेध है सो क्षत्रिय यज्ञ है। (शतपथ 13-2-14-2) "राजा वा एषः यज्ञानां यदश्वमेध" अर्थात् यह जो अश्वमेध है वह यज्ञों का राजा है। तात्पर्य यह है कि अन्य सब संगठनों का नियन्ता, रक्षक व संचालक क्षात्र संगठन या शासन तन्त्र ही है। तथा च "राष्ट्र वा अश्वमेधः।" "राष्ट्रे एते व्यायच्छन्तियेऽश्वम् रक्षन्ति।" राष्ट्र ही अश्वमेध है। जो अश्व की रक्षा करते हैं वे राष्ट्र की व्याप्ति को बढ़ाते हैं। उसे सुव्यस्थित करते हैं। जो बलहीन अश्वमेध करता है वह शत्रुओं द्वारा दूर फैंक दिया जाता है। अतः राष्ट्रपति राष्ट्र की रक्षा करते हैं हुए उसे विस्तृत व सुदृढ़ करते हैं। यही अश्वमेध है। प्राचीन काल के समान आज भी राज्य कार्य में अश्व आदि पशुओं का महत्व यथावत् बना हुआ है और यन्त्रों की गतिशील शक्ति अश्व शक्ति अर्थात् "हार्सपावर" से मापी जाती है। इसी प्रकार अश्व पशु तथा बल, वीर्य, ओज, पराक्रम, अस्त्र, शस्त्र तथा अन्य शासन व्यवस्था व युद्धोपयोगी पदार्थ अश्व के अन्तर्गत आ जाते हैं। अश्वमेध का अश्व इन सबका प्रतीक है। इन सबको संस्कारित करना अश्वमेध का प्रतिपाद्य है। इस प्रकार सूर्य, राष्ट्रपति, क्षात्र संगठन और अश्व पशु ये सभी अश्व हैं और इनका उपयोगी भाग मेध है। यह अश्वमेध यज्ञ राजनीति, अर्थनीति, दण्डनीति, विश्व-स्वशासन नीति आदि की उत्तम शिक्षा देता है, जो इसमें सम्पादित होने वाली यज्ञ

क्रियाओं से भली भांति विदित होता है : राजा और राज्य सबका संस्कार इससे होता है। "यजमानो वा अश्वमेध" राष्ट्र का स्वामी राजा जो यजमान है वही अश्वमेध (राष्ट्र का सार) है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि देव क्षत्र के कार्य कलापों का अनुकरण कर व्यवहार में मानुषी क्षत्र बल का फल प्राप्त करना अश्वमेध है। जैसाकि ब्राह्मणकार स्वयं ही अश्वमेध के लाभ बताता हुआ कहता है।

एष वै प्रभूर्नाम यज्ञः। यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते। सर्वमेव प्रभूतं भवति। इसी प्रकार, विभू, व्यष्टि, विधृति, व्यावृति, ऊर्नस्वान्त, पयस्वान, ब्रह्मवर्चसी, अतिव्याधी, दीर्घ, क्लृप्ति और प्रतिष्ठा ये बारह अश्वमेध के यौगिक नाम हैं। इनसे क्रमशः प्रभूत ऐश्वर्य, विविधता प्राप्ति, व्यवस्थित कार्य विभाजन, सामर्थ्य, स्वस्थान में प्रत्येक की नियुक्ति आदि फल प्राप्त होते हैं। अपि च-प्रजापति ने कामना की कि में शुभेच्छाएँ पूर्ण करू सभी प्राप्तव्य प्राप्त करू। उसने इस त्रिरात्र यज्ञ अश्वमेध को देखा उससे यज्ञ किया और सब कामनाएँ पूर्ण कर सब कुछ प्राप्त किया। जो अश्वमेध से यज्ञ करता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। सभी प्राप्तव्य प्राप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में भूरिशः इसका प्रयोजन बताते हुए कहा गया है। सब कुछ प्राप्ति के लिये और सर्व सम्पूर्णता व समृद्धि को राष्ट्र में बनाये रखने के लिये अश्वमेध किया जाता है।

<u>प्रजापति की आँख</u>—प्रजापति की आंख अस्वस्थ मृत सी होकर बाहर निकल कर गिर पड़ी वही अश्व है। सो उसका रहस्य यह है कि राष्ट्र का निरीक्षण विभाग शिथिल और प्रभाव शून्य हो गया। जब राष्ट्र के शासक की दृष्टि में दोष हो जावे। वह ठीक न देख सके या अन्धा ही हो जावे तो उसका परिणाम शत्रुवृद्धि और अराजकता ही होते हैं। इस एक अंग के अभाव में सम्पूर्ण प्रजापति मृत सा ही हो जाता है। राष्ट्र में पाप की वृद्धि और ज्ञान की अवहेलना होने लगती है, यही ब्रह्म हत्या है। इस कारण राष्ट्र का क्षत्रिय वर्ग पथभ्रष्ट, कर्तव्य-विमुख तथा पदभ्रष्ट हो जाता है। यही तो प्रजापति की आंख थे सो अपने स्थान से भ्रष्ट हो गिर पड़े। अब विद्वान् लोगों ने उन्हें पुनः संस्कारित किया, चिकित्सा की, उन्हें ठीक करके पुनः

यथा स्थान प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार विकलांग प्रजापति गर्व हुआ। यही आंख गिरने का रहस्य है।

जिस राष्ट्र को नष्ट करना हो वहां विद्वान् बुद्धिजीवी समुदाय की हत्या कर दो राष्ट्र स्वतः नष्ट हो जायेगा और जितने अधिक बुद्धिमान शत्रु होंगे उतना ही शीघ्र नष्ट होगा। अश्वमेध राष्ट्र को नष्ट होने से बचाता है जैसा कि कहा है—"परास्य द्विषन् भ्रातृव्यो भवति" इससे द्वेष करने वाला शत्रु परास्त हो जाता है। जो अन्य प्रजावर्ग में विद्वान पुरुषों की हत्या करते हैं अश्वमेध से उनकी भी चिकित्सा होती है। अश्वमेधयाजी सारी दिशाओं को जीत लेता है। अश्वमेध से सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा भी पूर्ण होती है। इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रयोजन से भी किया जा सकता है। इसका वर्णन इस प्रकार है—प्रजापति ने पुनः यज्ञ करने की सोचा। उसने प्रयत्न किया तप तपा सो वह इतना थक गया कि उसका यशोवीर्य रूप प्राण निकलने लगा, वह मरणासन्न हो गया परन्तु उसका मन, जीवित व सशक्त रहा। सो इस कारण जो वह अश्वत् अर्थात् मरणासन्न था सो अश्व हो गया। उसने अपने को मेध्य बनाकर आत्यन्वी होने का संकल्प किया और हो गया यही अश्वमेध का अश्वमेधत्व है। तात्पर्य यह है कि पराक्रमी पुरुष यदि यशोबल से हीन भी हो जाय और मनोबल बनाये रखते हुए शक्ति संचय करता रहे तो पुनः मृतप्राय राष्ट्र में प्राणों का संचार कर सकता है और विश्व सम्राट बन सकता है। यह अश्वमेध यज्ञ से सम्भव हो सकता है। (शतपथ–10-4-2-3-7)

<u>अश्वमेध विधि व्याख्या</u>—अश्वमेध करने की इच्छा वाला अर्थात् क्षात्र संगठन का नियोजन व राष्ट्रों का एक सूत्र में बान्ध कर विश्व सम्राट बनने की इच्छा जिसे है वह सर्वप्रथम क्या करे यह बताते हैं।

<u>1—ब्रह्मौदन</u>—दीक्षा से एक दिन पूर्व ऋत्विक् वरण कर उन्हें घृत मिला भात खिलाता है। इसे ब्रह्मौदन कहते हैं। बचे हुए शेष घृत को अश्व बान्धने की रस्सी में चुपड़ता है। यह रस्सी दर्भ की होती है इसे रशना कहते हैं। इसका तात्पर्य है कि जब कोई संगठनात्मक प्रवृत्ति अपना प्रभाव खो देती है तो उसे पुनः प्रभावशाली बनाना होता है। यह कार्य वही कर सकते

है। जिनमें इस प्रकार की योग्यता हो। इन्हें ही ऋत्विक् कहा गया है। यह राजनीति का प्रकरण है अतः यहां राज्य शासन व्यवस्था के योग्य विद्वान् ही ऋत्विक् कहे गए हैं। इस प्रकार के ज्ञान को रेत या वीर्य कहते हैं। ब्रह्मौदन उसी का प्रतीक है। राजा स्नेह पूर्वक इनका सत्कार कर इस महा कार्य में उन्हें नियुक्त करें। क्योंकि सफलता दिखाने का सामर्थ्य इनमें ही है। ये विशेषज्ञ हैं। इसका वर्णन इस प्रकार है। "प्रजापति ने यज्ञ किया, उसकी महिमा निकल भागी और यहां ऋत्विकों में प्रविष्ट हो गई। उसने इनकी सहायता से पुनः प्राप्त किया" इत्यादि।

2—सुवर्ण दान एवं रशनाभ्यन्जन—ऋत्विकों को सुवर्ण दान में देता है। सो यह अश्व का वीर्य ही था जो निकल कर सुवर्ण बन गया था, सो इस क्रिया से अश्व में वीर्य का आधान करता है। क्षत्रियगण को पुनः वीर्यवान् बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करता है। इसके पश्चात् शेष घृत को रस्सी में चुपड़ने का तात्पर्य है कि पशु को संस्कार एवं प्रशिक्षण देने के लिये बान्धना आवश्यक है। परन्तु बन्धन कष्टदायक होता है एवं परतन्त्र बनाता है। यहां राष्ट्र के क्षत्रियगण को बान्धना है उन्हें संस्कारित, आस्थावान् समर्पित, पराक्रमी व तेजस्वी बनाना यह बिना अनुशासन एवं प्रतिज्ञा बन्धन के सम्भव नहीं। बन्धन यदि स्नेहपूर्ण हो तो खटकता नहीं, दुःखों की ओर ध्यान न जाकर सहनशीलता व श्रद्धा बढ़ती है। खुरदरी रस्सी चुभती है पर चिकनी नहीं खटकती। हाथ से सहलाने और पुचकारने से, खिलाने पिलाने से क्रूर पशुभी क्रूरता छोड़ देते हैं। बन्धन और अनुशासन के बिना दोष दूर नहीं हो सकते सो क्षत्रियों का प्रेम पूर्वक अनुशासन में बान्धने का यत्न ही इस रशनाभ्यन्जन का तात्पर्य है। यह रस्सी 12 या 13 हाथ की होती है सो सम्वत्सर भी 12 माह या 13 माह का होता है। 13 वां अधिक मास सम्वत्सर का ककुद है। सम्वत्सर ऋतुओं का ऋषभ है, अश्वमेध यज्ञों का ऋषभ है सो ऋषभ के ककुद्-उच्चांग को संस्कारित करता है। इसका तात्पर्य है कि जितना बड़ा राष्ट्र उतना बड़ा अनुशासन तथा राजा स्वयं भी अनुशासित हो, अपने पद को संस्कार युक्त करे। रशना ग्रहण राष्ट्र की बागडोर ग्रहण करना है।

3—वसतीवरी आपः ग्रहण—मध्याह्न में चारों दिशाओं से लाए

ए जलों का ग्रहण करता है और पूरे सत्र में इन्हें साथ रखता है। इसका तात्पर्य है अपने राष्ट्र में चारों ओर बसने वाली श्रेष्ठ प्रजा का जो राज्य के प्रति निष्ठावान् एवं श्रद्धालु हो उसका इस महाकार्य में सहयोग लेना। इससे वह राष्ट्र में अन्नों को रोकता है। "प्रजा वै आपः" आपः प्रजाओं की प्रतीक है। वह अन्नों का उत्पादन करती है। अतः उनका सहयोग बहुत आवश्यक है क्योंकि "अन्नं साम्राज्यानामधिपतिः" अन्न साम्राज्यों का स्वामी है इसलिये कहा" दिक्षुवा अन्नं आपो अन्नम् अन्नेनैवास्मन् अन्नं अवरुन्धे।"

4—अश्व बन्धन—अश्व को रस्सी में बान्धने से पूर्व ब्रह्मा से अनुमति प्राप्त करता है। ब्रह्मा, उदगाता, होता और अध्वर्यु, ये चार ऋत्विक् हैं। ये निरीक्षण समर्थ, कार्य-संचालन-समर्थ प्रचार-प्रसार-समर्थ, एवं रक्षण-समर्थ विद्वान् और मुख्य व्यक्तित्व हैं। राष्ट्र का सारा कार्यक्रम इनके ही परामर्श से चलता है। ब्रह्मा इनमें प्रमुख होता है। सो इन्हें प्रधानमंत्री (ब्रह्मा) मानव संसाधन विकासमंत्री (होता) सूचना प्रसरण संचारमंत्री (उद्गाता) तथा रक्षा व गृहमंत्री (अध्वर्यु) कहा जा सकता है। सो इसका यही तात्पर्य है कि बिना मन्त्रियों के परामर्श या विद्वानों से पूछे बिना कोई कार्य न करें। स्वयं आज्ञापालक होकर राज्य की प्रजा को तथा अपने राज्यकर्मियों को आज्ञा पालक बनावें।

5—शुन उपप्लावन—अश्व को रस्सी से बान्धकर जल छिड़क कर प्रोक्षण करते हैं और पानी में तैराते हैं। पश्चात् एक चार आँख वाला पागल कुत्ता मारकर घोड़े के पेट के नीचे से पानी में बहा देते हैं। वास्तव में यहां एक ऐसा पुतला लेना चाहिए जिसका शरीर आदमी और मुंह कुत्ते का हो तथा चार आंखें (दो असली और दो आंखों जैसे निशान) होनी चाहिए।

इसका तात्पर्य है प्रजा अपने राजा का इस महाकार्य के लिये अभिषेक करती है और इस प्रकार राजा सभी विद्वत्जनों व साधारण जनों का इस हेतु अनुमोदन प्राप्त करता है और यह भाव व्यक्त करता है कि प्रजा में विचरता हुआ मैं श्वानवृत्ति दुष्ट पुरुषों को जो जाति द्रोही, व्यभिचारी, खुशामदी, दोहरे चरित्र के, वान्ताशी, (उल्टी करके खाने वाले) टुकड़े पर ईमान बेचने वाले, वचन से मुकरने वाले लोगों को जनहित के लिए समाप्त

कर दूँगा जल में बहाने का तात्पर्य प्रजा में विचरने वाले दुष्ट को प्रजा में विचरने वाले वरुण अर्थात् गुप्तचर व पुलिस संस्था द्वारा चुन-चुन कर नष्ट करता है। इसके लिए कहा गया है कि "अश्वमेध करना दुष्टों से वैर मोल लेना है।" अश्ववज्र है सो इस वज्र (दण्ड साधन एवं न्याय व्यवस्था) से दुष्टों का दमन कराना होता है।

अब अश्व को जल से बाहर निकाल कर जब तक शरीर से जल की बूंदें टपकती रहती है तब तक आहुतियां दी जाती है। इस प्रकार सहस्राहुति तक दी जाती है।

6—सावित्री इष्टि—तत्पश्चात् सविता देवता वाले मन्त्रों से तीन सावित्री इष्टियां की जाती हैं। ये तीन इष्टियां प्रतिदिन वर्ष भर की जाती है। इन इष्टियों का प्रयोजन यह है कि राष्ट्राध्यक्ष राजा जिस कारण से कोई कृत्य करता है, वह तभी पूर्ण हो सकता है जब सारी प्रजा वही चाहे जो उनका राजा चाहता है। इसके साथ ही राजा भी लोकप्रिय हो और प्रजा भी उसको चाहती हो। विजयाभिलाषी राजा की प्रजा में भी विजय की अभिलाषा व उत्साह ठाठें मारता हो यह आवश्यक है। इसके लिये राजा का सविता विभाग कार्य करे। सविता, देवों का प्रसविता, जन्म दाता, प्रेरणादायक है। वह लोक बुद्धि को प्रेरित कर उसमें दिव्यता या देवत्व का संचार कर देता है। तब प्रजा देवत्व से भर जाती है। वह सत्य के प्रति आस्थावान् एवं समर्पित हो जाती है। वह सत्य और न्याय के लिये प्राणोत्सर्ग करने को समुद्यत हो जाती है और इसी से यशस्वी रहती है तथा अपने सम्राट को भी यशस्वी देखना चाहती है।

सम्राट भी अपनी प्रजा की भावनाओं का आदर करता हुआ प्रतिदिन सविता परमात्मा से प्रेरणा प्राप्त कर सत्य और न्याय के प्रतिपूर्ण समर्पित व आस्थावान् हो। वह प्राणप्रण से अपनी प्रजा में यह विश्वास बैठा दे कि उनका सम्राट देव है और वह जो कर रहा है प्रजा के हित व लोक कल्याण के लिए कर रहा है। यही सावित्री इष्टि का रहस्य है। यथा प्रजापति अश्वमेधमसृजत्......(शतपथ 13-1-4-1) से स्पष्ट है। अर्थात् प्रजापति

ने अश्वमेध रचा वह उससे दूर चला गया। तब दोनों ने उसे खोजने की इच्छा से इष्टियों द्वारा उसका पीछा किया और पुनः उसे प्राप्त किया। सो जो इष्टियों से यजन करते हैं सो उस मेध्य अश्व को यजमान पुनः पाना चाहता है, अतः निरन्तर एक वर्ष तक इस प्रकार प्रजा को प्रेरित, उत्साहित सन्नद्ध करता रहता है।

7—<u>धृतिहोम</u>—सावित्री इष्टि के साथ प्रतिदिन धृति होम भी होता है। प्रातः काल इष्टि की जाती है और सायंकाल धृति होम किया जाता है। इसका तात्पर्य है राष्ट्र से बेरोजगारी दूर करना और प्रजा के योगक्षेम की अच्छी व्यवस्था करना, इसके बिना कोई प्रेरणा प्रभावशाली नहीं हो सकती। इष्टि से योग अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति और धृतियों से प्राप्त की रक्षा व सम्यक् उपभोग होता है।

8—<u>गाथा गान</u>—इस कृत्य में दो बीणावादक गायक जिनमें एक ब्राह्मण होता है दूसरा क्षत्रिय, वीणा बजाकर वर्ष भर प्रतिदिन गाथा गान करते रहते हैं। ये दोनों साथ-साथ नहीं गाते। एक दिन में गाता है दूसरा रात में। ब्राह्मण गायक दिन में और क्षत्रिय गायक रात में गाता है। ब्राह्मण गाता है "अयजत" अर्थात् यज्ञ करो और क्षत्रिय गाता है "अजयत" अर्थात् विजय प्राप्त करो। ब्राह्मण का इष्टापूर्त वीर्य है वह इनसे राष्ट्र को समृद्ध करता है। क्षत्रिय का वीर्य युद्ध है सो वह पराक्रम से राष्ट्र को समृद्ध करता है। इसका तात्पर्य ब्राह्मणकार बताता है कि जो अश्वमेध से यज्ञ करता है वह अपगत श्री हो जाता है और जब उसे श्री प्राप्त होती है तब वीणा बजाता है। वीणा वादक वर्ष भर जो गाते हैं सो यजमान में श्री को धारण कराते हैं। यह वीणा श्री का रूप है। (शतपथ–13-1-5-2)

भाव यह है जब विजयाभियान चलेगा तो धन का व्यय बढ़ेगा और समृद्धि न्यून होगी, जन हानि और चिन्ता भी राष्ट्र व्यापी होती है। उसके निराकरण के लिए राष्ट्र में एक वातावरण बनाने की आवश्यकता होती है। वातावरण बनाने में गायन, वादन, संगीत, नाटक और काव्य गाथा आदि का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। यहां मीडिया या प्रचार माध्यम का महत्व बताकर राष्ट्रहित में उसके उपयोग की चर्चा की गई है। यहाँ दो

प्रकार का वातावरण तैयार करना है एक पुरुपार्थ, कर्म एवं श्रम के प्रति रुचि का आदर का तथा भगवद् भक्ति एवं त्याग का और दूसरा पराक्रम, विजयेच्छा, उत्साह एवं वीरत्व का। अतः ब्राह्मण यज्ञगान अर्थात् कर्म एवं श्रम की प्रशस्ति गाता है, पुरुपार्थ युक्त भक्ति का वातावरण बनाता है। परन्तु क्षत्रिय जयगान गाता है और पराक्रम से ब्राह्मण द्वारा उत्पादित पदार्थों की रक्षा करता है। पुरुषार्थहीन भक्ति काम चोरों और हरामखोरों की वृद्धि करती है। केवल विजयगान लूटपाट और अराजकता उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार केवल, श्रमगीत व भक्ति गीत गाने से कमाता कोई और है और भोगता कोई और है। अतः केवल ब्राह्मण या केवल क्षत्रिय असमय का राग अलाप कर राष्ट्र की श्री समृद्ध नहीं कर सकते। किन्तु दोनों समय मे गाकर ही ऐसा कर सकते हैं।

<u>9—अश्वकर्ण में जप—</u>तृतीय सावित्री इष्टि में अध्वर्यु और यजमान अश्व के कान में एक मन्त्र जपते हैं। इसमें अश्व की महिमा का वर्णन है। सो इसका भाव है कि राष्ट्र के क्षत्रिय वर्ग को उसके महत्व और शक्ति का बोध कराया जावे, उनके साथ अपनत्व उत्पन्न किया जावे उनका नाम लेकर पुकारना और यह सम्बन्ध बताना कि पृथ्वी हम सबकी माता और द्यौ पिता है। अतः हम सब भाई-भाई है। यह राष्ट्र हम सबका है इत्यादि ऐसा व्यवहार प्रदर्शन करना जिससे प्रत्येक क्षत्रिय अपने राजा को अपने ही समान और अपना ही समझे। राजा के शत्रु को अपना ही शत्रु समझे। प्रशंसा, प्रोत्साहन, अपनत्व व आदरभाव राजा और राष्ट्र दोनों को सुदृढ़ करता है यह मनोवैज्ञानिक रहस्य है। इसीलिये इस कृत्य का फल बताया है कि शिष्ट और अनुशासित प्रजा उत्पन्न होती है।

<u>10—आशापालों की नियुक्ति</u>—अब अश्व को छोड़ने से पूर्व उसकी रक्षा हेतु सौ विवाहित ऐसे राजपुत्रों को नियुक्त करता है जो राजा के समीप सम्मान पूर्वक बराबर बैठने की क्षमता रखते हों। इन्हें आशापाल कहा जाता है। सो इसका तात्पर्य राष्ट्र रक्षा में विश्वास पात्र लोगों को नियुक्त करना ही है।

<u>11—अश्वमुञ्चन</u>—अश्व के कान में मन्त्र जपकर सौ अन्य अश्वों

के साथ छोड़ दिया जाता है। वर्ष भर यथेष्ट विचरता है, स्वेच्छा से आगे बढ़ता है परन्तु पीछे नहीं लौटने देते। अश्व को पानी में नहीं घुसने देते तथा मादा से नहीं मिलने देते। इसका तात्पर्य है कि विजय यात्रा पर निकले सेनापति व सेना के वीर क्षत्रिय युद्धक्षेत्र में अभीष्ट सिद्धि पर्यन्त आगे ही बढ़ते रहते, पीछे नहीं लौटते, पीठ नहीं दिखाते और संयम पूर्वक रहते हैं। जन सम्पर्क और मोहमाया से दूर रहकर ही सफलता सम्भव है, अन्यथा नहीं। "राजस्य मूलं इन्द्रियजयः-(कौटिल्य) पत्नी, बच्चों, इष्ट-मित्रों के मोह तथा संयम हीनता से कर्तव्यच्युत होकर पराजित होने की पूरी सम्भावना रहती है।

12—पारिप्लवाख्यान—अश्व छोड़ने के पश्चात् कशिपु नामक आसन विशेष दक्षिण वेदी पर बिछाकर होता बैठता है उसके दाहिने और यजमान दर्भ के आसन पर बैठता है दक्षिण में ब्रह्मा और उद्गाता बैठते हैं। अब होता पारिप्लव नामक आख्यान सुनाता है। यह दस दिन तक चलता है। इसमें एक ही राजा के दस भिन्न रूप, अधिकार व कर्तव्यों का बोध कराया गया है तथा दस प्रकार की प्रजा का वर्णन किया गया है।

13—प्रक्रम होम—अब दीक्षा ग्रहण के समय प्रक्रम होम करता है चार उद्भ्रमण की तथा तीन वैश्वदेव कुल सात-सात के क्रम से दक्षिणाग्नि में 49 आहुतियाँ दी जाती हैं इनका सम्बन्ध दीक्षा से है सो वहीं इसका रहस्य कहेंगे।

14—दीक्षा—दीक्षा का अर्थ है निश्चित अवधि के लिये किसी नैमित्तिक कार्य विशेष के लिए नियुक्त हो जाना और प्रमाद रहित हो उसे समय पर पूरा करने में प्राणप्रण से लगे रहना। अश्वमेध में वर्ष भर में 21 दीक्षाएँ होती हैं। इसका तात्पर्य है दिनचर्या नियत कर ठीक-ठीक कार्य विभाजन करना तथा विभागों का पुष्टीकरण समय पर करते रहना। बड़े कार्यों में योजनाहीन, अस्तव्यस्त रहने, दिनचर्या के बिगड़ जाने से स्वास्थ्य खराब होता है। क्षीणता आती है तथा सभी कार्य बिगड़ जाते हैं। अतः दीक्षा से दक्षता प्राप्त करते हैं।

15—पर्यंग पशु निरूपण अश्व के वापस लौट आने पर अहीन सोमयाग का आयोजन किया जाता है इसमें 13 दीक्षा 12 उपसद् और तीन सुत्या होती है। इस समय 21 यूप (खूँटा) गाड़े जाते हैं। उनमें पशुओं को बान्धा जाता है। बीच बीच में आरण्य पशु पक्षी भी रखे जाते हैं। पशु पक्षियों को रखने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रोन्नति में पशु पक्षियों का भी महत्व स्वीकार किया जाता है। रात को अन्न होम किया जाता है जो सत्तू, धाना, लाजा और घी से होता है। इसका प्रयोजन देवों और विद्वानों को प्रसन्न करना है। अश्व के सारे शरीर पर रस्सी लपेट देते हैं। फिर उसमें एक क्रम से पशुओं को बांधते हैं। यही पर्यंग पशु निरूपण है। फिर इक्कीस यूपों में पन्द्रह-पन्द्रह पशु बांधते हैं और एक में सत्रह पशु बांधते हैं। आरण्यक पशुओं को अग्नि के चारों ओर घुमाकर छोड़ दिया जाता है। ग्राम्य पशु ही ग्रहण किये जाते हैं।

इस सम्पूर्ण कृत्य के द्वारा राज्य व्यवस्था को सर्वाङ्ग पुष्ट और स्वस्थ बनाकर प्रजा को व्यवस्थित बसाने की शिक्षा दी गई है। विस्तार भय से हम उसे यहां नहीं दे पारहे हैं। प्रजापति ने कामना की कि दोनों लोकों पर विजय प्राप्त करूं, पृथ्वी लोक पर और देव लोक पर। उसने दो प्रकार के पशुओं को देखा ग्राम्य तथा आरण्य। सो ग्राम्य पशुओं को पृथ्वी के लिए प्राप्त किया और आरण्य पशुओं को देव लोक के लिए। ग्राम्य पशुओं को बाँधने का भाव यह है कि लोगमार्गों में मिलकर चलें तथा ग्राम के समीप ग्राम बसें और लोग मिल कर रहें। परन्तु जो आरण्य हैं वे रीछ, शेर, व्याघ्रादि सब चोर, तस्कर, डाकू, हत्यारों के प्रतीक हैं। इन्हें तो वन में ही रहना ठीक है अतः छोड़ देता है। ये ग्रामवासियों के मध्य न आने पावें। जैसे आरण्य पशु ग्राम्य पशुओं की तरह उपयोगी नहीं हैं वैसे ही ये लोग ग्राम्य-जनों के शत्रु हैं। परन्तु यदि इन्हें शासित कर उपयोगी बनाया जा सके तो बना सकते हैं। यह कार्य देवों अर्थात् विद्वानों का है। इन्हें वे ही वश में करने की युक्ति जानते हैं। आरण्य में ही हमारे तपस्वी विद्वान् अनुसन्धान, अध्ययन, अध्यापन व तपश्चर्या करते हैं। आरण्य पशुओं और आरण्य मनुष्यों दोनों से ही इनकी रक्षा आवश्यक है। अन्यथा राष्ट्र का ब्रह्म बल समाप्त हो जाएगा इत्यादि उत्तम शिक्षा इस प्रकरण में प्राप्त होती है।

16—अश्व संज्ञपन—आज अश्व अर्थात् क्षात्र संगठन दिग्विजय कर वापस लौटा है। अतः सर्वप्रथम उसका उल्लास पूर्वक स्वागत होगा। वह थका हुआ, घायल और क्षीण प्राण है। पर्याप्त जन धन की हानि उठानी पड़ी है। अतः उसे उपचार व चिकित्सा की आवश्यकता है। पश्चात् परिजनों से स्नेहालाप सम्मिलन भी होता है। तत्पश्चात् राष्ट्र को पुनः व्यवस्थित करने, समृद्ध व सुदृढ़ बनाने, विभागों का वितरण, पारिश्रमिक, पुरस्कारादि प्रदान करना तथा राष्ट्र के उपयोगी भाग को कहाँ-कहां लगाना इत्यादि प्रशिक्षण कार्य चलेगा। यह सब कार्य प्रतीकों के द्वारा किया जाता है।

अतः अश्व को जल से प्रोक्षण कर बेंत की चटाई पर वस्त्र बिछाकर सुवर्ण खण्ड रख कर लिटा देते हैं। अब उसे चार प्रकार की पत्नियां सहलाती है तथा पंखा करती है। पत्नियां सुइयों से उसे खुजलाती है। इस प्रकार राष्ट्र को श्री समृद्ध—और प्रजा से समर्थ करती है।

यहां कुछ लोग कहते हैं कि संज्ञपन में घोड़े को जान से मार देते हैं और उसकी मेद से अग्नि में आहुतियाँ देते हैं, यह ठीक नहीं है। ब्राह्मण कार के कथन को न समझ कर यह मूर्खता प्रचलित हो गई है। वह कहता है—"घ्नंति वा एतत् पशुम् यदेनं संज्ञपयन्ति" अर्थात् यह जो इस अश्व का संज्ञपन करते हैं सो यह पशु को मारते हैं। यहां अश्व को मारने की बात नहीं है किन्तु अश्व में जो पशु अर्थात् अनुपयोगी अंश है उसे मारकर संस्कृत करना है तभी वह राष्ट्र यज्ञ में आहुति के योग्य होगा। अश्व मर जायगा तो राष्ट्र मर जायेगा। अतः कहते हैं प्राणाय- स्वाहाऽपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा इत्यादि। यहां पर स्पष्ट लिखा है कि वह अश्व में प्राणों का आधान करता है यथा-"प्राणानेवास्मिन् एतद्दधाँति" (शतपथ 13-2-2-2) अपि च तथो हास्यैतेन जीव तैव पशु नेष्टम्भवति", अर्थात् तथ्य है कि जीवित पशु के द्वारा ही यहां कार्य करना अभीष्ट है। यहां हरिस्वामी ने मूर्खतापूर्ण व्याख्या की है कि उत्क्रान्त प्राण होने के बाद ही तो प्राणों का आधान सम्भव है। हमारा कहना है कि फिर तो मृत अश्व पुनः जीवित हो जाना चाहिए। वास्तव में उत्क्रान्त प्राण का अर्थ उखड़े प्राण अर्थात् थका, घायल व बेहोश है। अतः अश्वमेध यज्ञ में घोड़ा नहीं मारा जाता। राजा

और राष्ट्र तथा प्रशासन व सैन्यबल सबकी राष्ट्र यज्ञ में आहुतियां देने के योग्य मेध्य बनाना ही संज्ञपन है।

17—चार पत्नियां—अश्वमेध में चार पत्नियां अपनी अनुचरियों के साथ नियुक्त की जाती हैं तथा पाँचवीं एक कुमारी होती है इनके नाम हैं महिषी, परिवृक्ता, वावाता, तथा पालागली। ये राजा की रानियां नहीं है, अपितु राष्ट्र की रक्षिका संस्थाओं की प्रतीक हैं। ये क्रमशः भू संरक्षण एवं प्रबन्ध संस्था, महासभा, कार्यकारिणी तथा गुप्तचर संस्था की प्रतीक हैं। कुमारी शिक्षा विभाग एवं एम्पलायमेन्ट संस्था है। शेष अनुचरियां इन्हीं की पूरक व पोषक—उप संस्थाओं की प्रतीक हैं। ये सभी एक स्थान पर बैठकर राजा के साथ व्यवस्था सम्बन्धी बातचीत परामर्शादि करती है। इसे न समझकर महीधर सायण व हरिस्वामी ने मूर्खतापूर्ण प्रलाप किया है।

18—वपा होम—देवों को प्रसन्न करने अर्थात् विद्वानों की राष्ट्र के लिए सहानुभूति सदाशयता व सहायता पाने हेतु स्वयं का अंशदान करना ही वपा होम कहलाता है, सो आज्य अर्थात् घी से ही करना चाहिए, क्योंकि आज्य ही मेध है और देवों का प्रियधाम है। यहां आज्य अश्व की वपा (चर्बी) का प्रतीक है, अतः इसे वपा होम कहा जाता है। अर्थात् राष्ट्र का सार भाग राष्ट्र हित में प्रदान करना। जब राष्ट्र, उत्पादन और संरक्षण हेतु श्रम करना है तब शरीर की वपा (चर्बी) की ही आहुति लगती है। उसे घृतादि खाकर पूरा करते हैं, सो यह वही कृत्य है। विजय के पश्चात् क्षति-पूर्ति करना ही वपा होम है।

19—ब्रह्मोद्य—इसके पश्चात् ज्ञान चर्चा होती है। राष्ट्र के शिक्षा संस्थाओं के समुन्नत और विकसित बनाने का परामर्श, योजना निर्माण और तत्व ज्ञान का उपयोग यह सब ब्रह्मोद्य है इससे राष्ट्र ब्रह्मवर्चस्वी होता है। युद्ध के पश्चात् ही यह सब सम्भव हो पाता है। जब उदर भरा हो और वातावरण शान्त हो। वैज्ञानिक अनुसन्धान भी तभी सम्भव हो पाते हैं। अतः इस कृत्य में ऋत्विकों और यजमान के प्रश्नोत्तर होते हैं।

20—अभिमेथन—यह एक दूषित कृत्य वैदिक धर्म विरोधी लोगों

द्वारा बाद में जोड़ दिया गया है। रानियों से अश्लील हंसी मजाक आदि ऋत्विकों द्वारा करने का वर्णन है सो सब धूर्तकृत्य है। इसे शतपथ में परिशिष्ट कहा गया है। अतः यह प्रक्षेप है। यथा यथाद्विगो परिशिष्ट भवति… इत्यादि अतः यह अश्वमेध का भाग नहीं है।

<u>24—अवभृथ स्नान एवं दक्षिणा—</u>अब यज्ञ समाप्त हो रहा है। अवभृथ स्नान के पश्चात् अनुबन्ध्याइष्टि करके उदवसानीया नामक इष्टि करते हैं। पश्चात् दक्षिणा प्रदान की जाती है। इस समय चारों पत्नियाँ व अनुचरियाँ एक निश्चित क्रम में ऋत्विकों के पास खड़ी की जाती हैं क्योंकि ये उन्हीं से सम्बन्धित संस्थाओं की प्रतीक होती हैं। अतः दक्षिणा के समय ऋत्विकों को धनादि देकर उन रानियों व अनुचरियों को भी उन्हें सौंपते हैं। इसका आशय न समझकर सायण व हरिस्वामी और अन्य कई आचार्यों ने इस प्रकरण का अर्थ किया कि यजमान रानियों और अनुचरियों को दक्षिणा के रूप में ऋत्विजों को दे देता है। यह नासमझी है। देखो उद्वसानीय इष्टि में स्थित चार जाया, पाँचवीं कुमारी और 104 अनुचरियों को जैसे जिनके साथ नियुक्त किया गया था उसी अवस्था में दक्षिणा स्वरूप द्रव्य प्रदान करता है। यह है इसका वास्तविक अर्थ न कि स्त्रियों को ही दान में दे देता है।

इस प्रकार अश्वमेध कृत्य का संक्षिप्त परिचय कराया गया। बहुत सी क्रियाएँ छूट गई हैं। मुख्य-मुख्य का ही ग्रहण किया गया है। इस अश्वमेध में सम्पूर्ण राजनीति, सार्वभौम शासन व्यवस्था आदि का उत्तम शिक्षण प्रतीकों के माध्यम से दिया गया है। अश्वमेध का अर्थ है पृथ्वी के सभी अच्छे राजाओं का प्रजा के सहयोग से विनियोग कर विश्व साम्राज्य (कामन वेल्थ) का गठन करना। सार्वभौम साम्राज्य का एक सर्वसम्मत सम्राट् अभिषिक्त करना इत्यादि। वाममार्गी काल में वैदिक यज्ञों का स्वरूप भ्रष्ट कर दिया गया और उसमें हिंसादि का प्रक्षेप कर दिया गया, अश्वमेध में जो घोड़ा मारना, चर्बी व मांस की आहुति देना, रानी का मृत अश्व के साथ सहवास कराना तथा रानियों और अनुचरियों को ऋत्विकों के लिए दान कर देना लिखा है वह सब धूर्तों का प्रक्षेप ही समझना चाहिए। मध्य कालीन कर्मकाण्डी कर्म-

काण्ड का आशय ही नहीं समझते थे इसमें कोई सन्देह नहीं। अन्यथा यह विदूषण हो ही नहीं पाता। इस युग में मात्र महर्षि दयानन्द ही एक मात्र विद्वान् हुए हैं। जिन्होंने वैदिक कर्म का वास्तविक स्वरूप और रहस्य समझा और उसकी उपयोगिता जानने का मार्ग प्रशस्त किया।

॥ इति ॥

❀ इस प्रकाशन में आर्थिक सहयोग करने वाले दानदाताओं की सूची ❀

1–	श्री हनुमान प्रसाद जी चौधरी (उदयपुर)	1000/- रु०
2–	श्री अतरसिंह जी त्यागी (खेखड़ा-मेरठ)	1000/- रु०
3–	श्री मंत्री जी, आर्यसमाज बाराँ (राज०)	1000/- रु०
4–	श्री राजेन्द्रकुमार जी आर्य एवं श्रीमती उषादेवी जी आर्या तथा श्री राजेन्द्र कुमार जी एवं श्रीमती मिथिलेश जी	1000/- रु०
5–	श्री मंत्री जी, भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली	500/- रु०
6–	श्री दीपक जी भाटिया एवं श्रीमती इन्दु जी भाटिया (कोटा जं)	501/-रु०
7–	श्री सेठ गजानन्द जी आर्य (बारां-राज०)	500/- रु०
8–	श्री श्रवणलाल जी शर्मा (बाराँ-राज०)	500/- रु०
9–	श्री शंकरलाल जी पाल (कोटा जं०)	500/- रु०
10–	आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, जालंधर	250/- रु०
11–	श्री रामजी लाल जी शर्मा (कोटा जं०)	250/- रु०

—आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें—

		मूल्य
1–	स्वामी दयानन्द का आर्थिक चिन्तन (डॉ० रामकृष्ण आर्य)	120/-रु.
2–	स्वामी दयानन्द का आर्थिक चिन्तन, पुस्तकालय संस्करण	200/-रु.
3–	दहेज एक भयंकर विषधर (डॉ० रामकृष्ण आर्य)	10/-रु
4–	श्राद्ध विवेक (श्री वेदप्रिय शास्त्री)	8/-रु.
5–	अश्वमेध यज्ञ परिचय (श्री वेदप्रिय शास्त्री)	2/- रु.

क्रम सं०–1, 2 व 5 पर 50% एवं 4 पर 25% कमीशन देय होगा।

दानदाता श्री हनुमान प्रसाद जी चौधरी का परिचय

आर्य समाज के प्रतिष्ठित कार्यकर्ता और भूगर्भ विज्ञानी श्री हनुमान प्रसाद जी चौधरी का जन्म राजस्थान के सामोद ग्राम में एक लब्ध प्रतिष्ठित परिवार में 1 फरवरी 1921 को हुआ। सन् 1944 में आपने भूगर्भ विज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त की और अपने प्रदेश राजस्थान के विशेषकर सिरोही जिले के भूगर्भ में छिपी बहुमूल्य खनिज सम्पदा यथा-केल्साइट, क्वार्ट्ज, फेल्सफार, एस्बेस्टोन, सोपस्टोन, वालेस्टोनाइट आदि की सर्वप्रथम खोज की। आपने ही सर्वप्रथम मदार और बड़ी ग्रामों के निकट पाइरोफिलाइट और कालागुमान में बहुमूल्य रत्न पन्ने की खोज की।

जनसमुदाय के शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक विकास और यज्ञ शाला, मन्दिर, गुरुकुल आदि का जिर्णोद्धार, नवनिर्माण एवं शैक्षणिक छात्रवृत्ति हेतु आप अपने पुरुषार्थ से अर्जित विपुल धन का पर्याप्त भाग (लाखों रुपये) दान कर रहे हैं। सत्यार्थ प्रकाश रचना स्थली उदयपुर का नवलखा महल आपके सतत पुरूषार्थ और 10 लाख रुपये प्रदान करने पर राजस्थान सरकार ने आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, जयपुर के नाम हस्तान्तरित किया। इसके बने ट्रस्ट के आप सम्प्रति अध्यक्ष हैं। वर्तमान में आप आर्य समाज उदयपुर के अध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उपाध्यक्ष तथा कई गुरुकुल और समाज सेवी संस्थाओं और न्यासों के संरक्षक होकर सक्रिय सामाजिक और धार्मिक जीवन बिता रहे हैं।

आपने अपनी विदुषी धर्म पत्नी श्रीमती रतन देवी की प्रेरणा से "श्री चौधरी चेरीटेबल फाउन्डेशन" की स्थापना कर रखी है जिसमें आगामी दो वर्ष में 40 लाख की स्थिर निधि हो जायेगी। प्रस्तुत पुस्तिका "अश्वमेध यज्ञ परिचय" के प्रकाशन में आपने 1000/- रुपये दान दिया और समय २ पर पत्र लिखकर समिति को उत्साहित रखा है तदर्थ समिति आपको बहुत २ धन्यवाद और साधुवाद देती है।

नरेन्द्र कुमार वार्ष्णेय
संयोजक
आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा

सीमा प्रिन्टर्स आदर्श नगर, चम्बल कॉलोनी के पीछे, गुमानपुरा, कोटा।